भरत नाट्यशास्त्र में नाट्यशालाओं के रूप

1174

लेखक:-
रायगोविन्द चन्द्र

भरत नाट्यशास्त्र में नाट्यशालाओं के रूप

लेखक

डा० राय गोविन्द चन्द्र

प्रकाशक

काशी मुद्रणालय,

विश्वेश्वरगंज, वाराणसी।

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण १५ फरवरी १९५८ ई०

मूल्य ५)

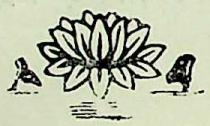

मुद्रक—

काशी मुद्रणालय,

विश्वेश्वरगंज, वाराणसी।

श्रद्धेय

डा० वासुदेवशरणजी अग्रवाल

प्राध्यापक काशी विश्वविद्यालय

के

कर कमलों में सादर सपर्पित

प्रस्तावना

संस्कृत तथा पाली ग्रन्थों के अन्वेषण से ऐसा ज्ञात होता है कि नाटक प्राचीन भारतीयों के जीवन का अभिन्न अंग था। पाणिनि से लेकर हिन्दी के पृथ्वीराज रासो तक में हमें नाटकों के विवरण प्रायः सभी ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र को पढ़ने से तो ऐसा भास होता है कि नागरिक जीवन के इस अंग पर राज्य को नियंत्रण करने की आवश्यकता पड़ गई थी (कौटिल्य–अर्थशास्त्र, अध्यक्ष प्रचार अधिकरण २७। ३९, ४१)। नाटक की उपयोगिता को भी लोग भली-भाँति समझने लग गए थे तथा राजा की ओर से नट-नटियाँ गुप्तचरों के वेश में दूसरे राज्यों में भी भेद लेने को भेजी जाने लगीं थीं (कौटिल्य षडगुण्य, सप्तम अधिकरण, ४३, ४४)। इनका वेतन प्रायः निश्चित था जो ३५० पण से ७०० पण तक होता था (कौटिल्य—योगवृत्त अधिकरण ५। १६, १७) तथा राज्य की ओर से नटों की मण्डलियों पर कर भी लगने लगा था (कौटिल्य–अध्यक्ष प्रचार प्रकरण–२७। ३९) जैसे आज के आमोद-प्रमोद पर लगता है। प्रायः नट और नटियों के रूप में लोग राजाश्रय प्राप्त करके अपना कार्य भी बना लेते थे, जैसा हम मालविकाग्निमित्र में देखते हैं। इतना सब होते हुए भी अभी तक हमें यह निश्चित रूप से पता नहीं लग सका कि हमारा विश्वविख्यात कालिदास का अभिज्ञान शाकुन्तल, मालविकाग्निमित्र अथवा शूद्रक का मृच्छकटिक या भास का स्वप्नवासवदत्ता किस प्रकार के नाट्य-मण्डप में खेला जाता था, तथा इन मण्डपों के क्या रूप थे। अभी तक की खोज के फलस्वरूप हमें सीतावेंगा गुफा को छोड़कर कोई ऐसा गृह नहीं प्राप्त हुआ है जिसे हम साधिकार नाट्य-मण्डप की संज्ञा दे सकें।

भरत नाट्य-शास्त्र में जो प्रायः ईसा की पहली अथवा दूसरी शताब्दी में संकलित समझा जाता है, हमें नाट्यमण्डप के प्राचीन रूप का भी संकेत प्राप्त होता है, जो पहाड़ों की गुफा में बनता था–'शैल गुहाकारो'। पहाड़ों की कन्दराएँ प्रायः नागरिकों के आमोद-प्रमोद के काम में आती थीं यह तो सर्वमान्य है (कुमारसम्भव–१, १०, मेघदूत–१, २७)। कोई आश्चर्य नहीं कि इनमें भरत के पूर्व नाटक भी खेले जाते रहे हों। सीतावेंगा गुफा का आकार-प्रकार तथा उसके समक्ष बना प्रेक्षकों के हेतु सीढ़ीनुमा स्थान इस धारणा को पुष्ट ही करता है। भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में इस प्रकार के गुफारूपी नाट्यमण्डपों के आकार

को तथा आर्यों के तम्बुनुमा नाट्यमण्डप के आकार को जिनमें वे कदाचित् पहले अपने नाटक खेलते थे, दोनों को अपनाया है। इन दोनों के संमिश्रण से जो रूप उन्होंने नाट्यमंडपों के निर्धारित किये वे सर्वथा भारतीय हैं। प्राचीन ग्रीक और रोमन स्वरूपों से इनका कोई सम्बन्ध नहीं प्रतीत होता। पाश्चात्य नाट्यमण्डप तो खुले मैदानों में बनते थे तथा उनमें दर्शकों के हेतु अर्द्धचन्द्राकार सीढ़ीनुमा प्रेक्षास्थान बनते थे। यहाँ उसके विपरीत नाट्य-मण्डप की व्यवस्था एक गृह के भीतर प्राप्त होती है।

भरत ने नाट्यमण्डपों के तीन आकार बताए हैं, विकृष्ट, चतुरश्र और त्र्यश्र। आज भी हमें कहीं त्रिकोण नाट्यमण्डप देखने को नहीं मिलते, चौकोर तथा लम्बे तो मिल भी जाते हैं। प्रायः त्रिकोण नाट्यमण्डप के लाभ पर हमारा ध्यान अभी तक नहीं गया है। इसमें थोड़े स्थान में हम नाट्य कर्म कर सकते हैं। विकृष्ट नाट्यमण्डप की विशेषता यह है कि इसमें अधिक जनसमुदाय बैठ सकता है। इन नाट्यमण्डपों के विस्तार में आधा स्थान नाट्य के पात्रों के हेतु तथा आधा दर्शकों के हेतु रहता था। आज दर्शकों के हेतु अधिक स्थान रहता है, पात्रों के हेतु कम।

इन तीन प्रकार के नाट्यमण्डपों को नाप-जोख के हिसाब पर ज्येष्ठ, मध्यम और अवर इन तीन विभागों में बाँटा गया है। ज्येष्ठ देवताओं के हेतु, मध्यम राजाओं के हेतु तथा अवर जनसाधारण के लिये। कदाचित् देवताओं के हेतु बड़ा स्थान इस कारण आवश्यक समझा जाता था क्योंकि ऐसा विश्वास था और है कि ये स्वर्गवासी तो मनुष्यों से आकार में भी बड़े ही होंगे। राजाओं के साथ उनके समाज का होना आवश्यक था, इस कारण भी उनके हेतु औरों की अपेक्षा अधिक बड़े नाट्यमण्डप की व्यवस्था है। जनसाधारण उतना व्यय भी तो नहीं कर सकता था जितना राजा लोग, इस कारण उनके हेतु छोटे नाप के नाट्यमण्डप बनते थे।

इन नाट्यमण्डपों के बनाने के हेतु जो नाप–जोख का ब्योरा हमें यहाँ प्राप्त होता है वह भी बड़ा वैज्ञानिक है। नाप का आधार ही अणु है। आज हम अणु और परमाणु के युग वाले भी इसमें कोई नई धारणा नहीं स्थापित कर सकते। आठ अणुओं का एक रज बताया गया है (भरत—२, १३)। इस प्रकार के नाप में कहीं भूल होने की सम्भावना ही नहीं है।

नाट्यमण्डप को भरत ने तीन भागों में आज के रंगमंच की भाँति बाँटा है तथा

एक में प्रेक्षागृह, दूसरे में रंगशीर्ष, रंगपीठ तथा तीसरे में नेपथ्य की योजना की है। नेपथ्य में भी पात्रों के हेतु सूचिका बनाने का विधान मिलता है। दर्शकों को नाटक देखने के हेतु जो भी सुविधायें उस समय दी जा सकती थीं, उन सबका यहाँ समावेश है। भरत ने नाट्य-मण्डपों के स्वरूप को यहीं नहीं छोड़ दिया है, उनको सुसज्जित तथा आकर्षक बनाने के हेतु भी युक्तियाँ बताई हैं, जिससे ऐसा अनुमान होता है कि नाट्यमण्डपों की भरत के समय तक एक रमणीक स्थान के रूप में कल्पना हो चुकी थी।

भरत नाट्यशास्त्र के विवरण को पढ़ने से हठात् यह भावना उठने लगती है कि जब आचार्यों ने नाट्यमण्डपों के विषय में इतनी बातें बताईं तो कुछ छोड़ क्यों दी? कुछ खम्भों के स्थान बताये तो औरों के क्यों नहीं बताये? खिड़कियों के स्थान के बताने में क्या औचित्य था? इससे ऐसा अनुमान होता है कि देश में उस समय भी कुछ ऐसे राजगीर थे जो केवल नाट्यमण्डप बनाया करते थे और इनके निर्माण के विशेष नियम वे ही जानते थे, विद्वानों को तो केवल मोटी-मोटी बातों का ही पता था। इस प्रकार इन राजगीरों की सहायता के बिना नाट्यमण्डपों का बनना कठिन था, इसी कारण भरत ने भी इनकी सहायता लेने की बात कही है (भरत—२, २४)। कदाचित् उस समय तक सबके कर्म निश्चित हो चुके थे और विद्वान कारीगरों के काम में हस्तक्षेप नहीं करते थे। इसी कारण हमें कहीं-कहीं कुछ बातें छूटी हुई प्रतीत होती हैं।

१९५४ में मैंने फ्रांस में इस विषय पर कुछ कार्य प्रारम्भ किया था परन्तु समयाभाव के कारण वह पूर्ण न हो पाया। अभी भी यह कार्य अपूर्ण ही है परन्तु आज का दृष्टिकोण अपूर्ण खोज के कार्य के भी प्रकाशन की माँग करता है। अतः यह प्रयास पाठकों के समक्ष उपस्थित किया जा रहा है, जिसमें विद्वानों का ध्यान इधर आकृष्ट हो तथा इस विषय पर भी वैज्ञानिक ढंग से अन्वेषण हो और हम प्रत्येक युग के अपने नाट्यमण्डपों के स्वरूप को पुनः अपने समक्ष उपस्थित कर सकें।

कुशस्थली
वाराणसी

गोविन्द चन्द्र

भरत नाट्यशास्त्र में नाट्यशालाओं के रूप

भारत की किसी भी विद्या के इतिहास की खोज का कार्य कठिन है। मॅस्स्यु सिलवाँ लेवी कहते हैं कि भारत के लोगों का चमत्कार में विश्वास अधिक होने के कारण यह पता लगाना कठिन है कि प्राचीन समय में इस देश में नाट्य का किस प्रकार विकास हुआ (सिलवाँ लेवी, लँ थियात्र आँदिया, पृ० २६७)। प्रायः यह विश्वास किया जाता है कि वेदों की भाँति नाट्य का जन्म भी ब्रह्मा से हुआ (श्री सीताराम चतुर्वेदी, अभिनव नाट्यशास्त्र, पृ० १६-१७)। इसका विवरण भरत-नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में भी मिलता है—श्रूयतां नाट्य-वेदस्य सम्भवो ब्रह्मनिर्मितः (भरत, १—७) परन्तु नाट्य के इतिहास के जिज्ञासु को इस वाक्य से कोई लाभ नहीं होता। प्राचीन मिस्र में नाट्य के विषय में ऐसा विचार था कि ओसरिस की पूजा से इसकी उत्पत्ति हुई थी (ज्योर्ज फ्रीडले इत्यादि, ए हिस्ट्री ऑफ दि थियेटर, पृ० २-६)। प्रायः ऐसा ज्ञात होता है कि इनकी प्रयोगशालाएँ ओसरिस के मन्दिर में ही हुआ करती थीं जो चौकोर बनती थी। मूर्ति के समक्ष ही नाटक खेले जाते थे। सबसे प्राचीन नाटक हमें मिस्र में ४००० वर्ष ईसा से पूर्व के मिलते हैं (ज्योर्ज फ्रीडले, ए हिस्ट्री ऑफ दि थियेटर, चित्र १)। भारत की प्राचीनतम सभ्यता के अवशेष जो सिन्ध की उपत्यका में मिले हैं उनमें कुछ मिट्टी के मुँह पर लगाने के चेहरे मिले हैं जो मनुष्यों के आकार के हैं। परन्तु इनके सिर पर दो सींग विद्यमान हैं। एक चेहरे के सींग बैल के सींग की भाँति हैं। तथा दूसरे के मेढ़े की भाँति (मैके, फरदर एक्सकवेशन एट मोहनजोदड़ो, फलक ७४, चित्र २१, २२, २५, २६; फलक ७६, चित्र १, २, ३, ४)। इन चेहरों के मिलने से ऐसा अनुमान होता है कि प्राचीन सिन्धुवासियों के नगरों में भी नाटक खेले जाते थे। नटी की काँसे की मूर्तियाँ तथा एक नट की मूर्ति भी इस धारणा को पुष्ट करती हैं (मारशल, मोहनजोदड़ो एण्ड इण्डस सिविलीजेशन, फलक ६४ तथा, मैके, फरदर एक्सकवेशन, फलक ७३, चित्र १०-११)।

सबसे प्राचीन साहित्यिक निर्देश नाटक के विषय में हमें यजुर्वेद के पुरुषमेध यज्ञ के प्रकरण में मिलता है (शुक्ल यजुर्वेद ३०, ६, १)। यों तो मस्स्यु सिलवाँ लेवी का कहना है कि ऋक् की १५ ऋचाएँ ऐसी हैं जो नाट्य के संवाद की भाँति प्रतीत होती हैं (लेवी, उपरोक्त, पृ० ३०१)। यदि यजुर्वेद के समय नाट्य की कोई व्यवस्था यज्ञ के समय हुआ करती थी तो वह अग्नि के सम्मुख ही होती होगी। कोई विवरण अभी तक इस प्रकार का प्राप्त न होने के कारण इस विषय में कुछ कहना कठिन है। पाणिनि की अष्टाध्यायी में नट और नन्दीकर शब्द मिलते हैं (पाणिनि ३, २, २१)। इससे ऐसा सम्भव प्रतीत होता है कि उस समय रंगभूमि की व्यवस्था थी तथा नाट्य भी होते थे।

अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने षाड्गुण्य नामक अधिकरण में शत्रु के पास से राजकुमारों को छुड़ा लाने के उपायों के निर्देश में नटों, नर्तकों, गायकों तथा अभिनेताओं को शत्रु के राज्य में भेजने का निर्देश किया है। इससे ज्ञात होता है कि नट तथा अभिनेता उस काल में विद्यमान थे। कौटिल्य के योगवृत्त अधिकरण में इनके वेतन की व्यवस्था मिलती है जो उस समय ३५० से ७०० पण तक होता था। इससे ऐसा ज्ञात होता है कि उस समय इस व्यवसाय में अच्छा पैसा मिलता था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से हमें नाट्यशालाओं का भी संकेत प्राप्त होता है। अध्यक्ष प्रचार अधिकरण के प्रथम अध्याय में निम्नलिखित वाक्य प्राप्त होते हैं— 'न च तत्राराम विहारार्थाः शालाः स्यु' ॥४१॥ नट नर्तक गायक वादक वाग्जीवन कुशीलवावान कर्म विघ्नम् कुर्युः ॥४२॥ इन वाक्यों से यह पता चलता है कि उस समय नाट्य के लिये शालाएँ नगर में बनाई जाती थीं।

इसी प्रकार बौद्ध निकायों में भी हमें नट तथा नटगामनी शब्द मिलते हैं (हजरा आर. सी., बुद्धिस्ट एविडेन्स फॉर दि अर्ली एकजिस्टेन्स आफ ड्रामा, आई. एच. क्यू. जून १९३१, खण्ड १७, सं० २, पृ० १९७)। पतञ्जलि के महाभाष्य में कंसबध और वालिबध नाटकों के विषय में संकेत प्राप्त होता है–'इह तु कथं वर्त्तमानकालता कंसं घातयति बलिं बन्धयतीति चिरहते कंसे चिरबद्धे च बलौ। अत्रापि युक्ता। कथम्। ये तावदेते शोभनिकानामैते प्रत्यक्षं कंसं घातयंति प्रत्यक्षं च बलिं बन्धयन्तीति।"

वाल्मीकि रामायण के काल में ऐसा ज्ञात होता है कि नट नर्तकों के संघ भी बन गए थे (अयोध्याकाण्ड ६, १४) तथा जनता इनके मनोहर वचनों से अपना मनोरंजन भी करती थी। "नट नर्तक संघानाम् गायकानाम् च गायताम्। यतः कर्णसुखा वाचः सुश्राव जनता ततः।" इससे यह भी निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि नटों के कार्य के लिये नटशालायें थीं जिनमें जनता का प्रवेश था। हरिवंश में हमें रामायण नाटक तथा कौवेर रम्भाभिसार नाटकों के प्रकरण प्राप्त होते हैं। परन्तु उन नाटकों के हेतु जो रंगशालायें बनाई गई होंगी उनका विशेष परिचय नहीं प्राप्त होता। वात्स्यायन के कामसूत्र में 'समाज' शब्द प्राप्त होता है जो कदाचित् नाटक के समारोह का द्योतक था। ये समाज प्रायः सरस्वती भवन में हुआ करते थे (वात्स्यायन, नागरक वृत्त प्रकरण घटा निबन्धन-१५)। 'समाज' शब्द प्रायः इसी अर्थ में दीघनिकाय में भी प्राप्त होता है। (दीघनिकाय-पारी ३-१५३) कदाचित् ये 'समाज' वे ही हैं जिनके विषय में अशोक के एक अभिलेख में यह मिलता है कि 'समाज' बड़े उच्छृङ्खल हो गये थे तथा उनसे हानि की सम्भावना थी। (डा० भण्डारकर, अशोक (१९३२) पृ० २९७; डा० भण्डारकर, इण्डियन अण्टिक्वेरी ख० १३ (१९१३) पृ० २५५, २५८; एन० जी० मजूदार इण्डियन अण्टिक्वेरी खं० ४८ (१९१८) पृ० २२१, २२३ मोनिन्द्र मोहन बोस-दि रिलीजन आफ अशोक बुद्ध, जरनल आफ दी डिपार्टमेण्ट आफ लेटर्स, युनिवर्सिटी आफ कलकटा, ख० १० (१९२३) पृ० १४१-१४३ इत्यादि)। ये 'समाज' कदाचित् अशोक के पश्चात् सरस्वती भवन में होने लग गये होंगे। कामसूत्र में हमें 'प्रेक्षण' शब्द प्राप्त होता है जिससे संबंधित 'प्रेक्षागृह' शब्द था। कुशीलवाश्चागन्तवः प्रेक्षणकमेषाम् दद्युः। धूप विलेपन घटा प्रकरण, १६) जातकों में भी 'नट' तथा 'नाटक' शब्द प्राप्त होते हैं (कुश जातक, तथा उदय जातक)। परन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि ये बौद्ध नाटक संघाराम में ही हुआ करते होंगे। जैन रायपसेणिय सुत्त में हमें नाट्यगृह का एक प्राचीन वर्णन प्राप्त होता है। नाट्यभवन को 'पेच्छाघर मण्डप' कहते थे। इस घर में कई वेदियाँ होती थीं तथा यह अनेकों खम्भों तथा अर्धचन्द्राकार तोरणों से सुशोभित होता था जिनपर 'शालभञ्जिकायें' तथा 'ईहामृग' बनाकर लगाये जाते थे। इस प्रकार के भवनों की दीवाल सुन्दर चिकनी बनाई जाती थी जिन पर विविध प्रकार की चित्रकारी की जाती थी। छत पर कमल तथा लताओं की आकृतियाँ

बनाई जाती थीं। रंगद्वार पर तोरण बनाये जाते थे तथा दोनों ओर चन्दन से सुगन्धित जल भरे हुए घट रखे जाते थे। रंगमंच के समक्ष रंगीन पर्दे डाले जाते थे जिनमें घंटियाँ लटकी रहती थीं जिसमें पर्दा खोलने के समय वे बज उठें। रंगमंच को 'अखाडग' कहते थे। यह नाट्यमण्डप के बीच में स्थित रहता था। इसमें बहुत से यन्त्र लगे रहते थे जो विद्याधरों इत्यादि को दिखाने के कार्य में प्रयुक्त होते थे। इस रंगमंच के बीच में एक सिंहासन रहता था। अग्नि-पुराण में भी ३३८ से लेकर ३४२ अध्याय तक रस, रीति, नृत्य, नाटक तथा अभिनय इत्यादि पर हमें कुछ सामग्री प्राप्त होती है। परन्तु अग्नि पुराण, कदाचित् भरत नाट्यशास्त्र के पीछे का ग्रन्थ है इस कारण उसकी उपयोगिता उतनी नहीं रह जाती। शिल्परत्न, काव्यमीमांसा तथा संगीतमार्तण्ड में भी राजाप्रसाद के नाट्यमण्डपों के कुछ विवरण प्राप्त होते हैं (श्री चन्द्रभानु गुप्त, इण्डियन थियेटर, पृ० २५)। परन्तु ये भी ग्रन्थ भरत नाट्यशास्त्र से प्राचीन नहीं हैं। इन सब प्रमाणों से स्पष्ट यह पता नहीं लगता कि नाट्यों का किस प्रकार विकास हुआ तथा नाट्यमण्डपों का प्राथमिक रूप क्या था।

डा० वासुदेव शरण जी का यह विचार है कि हमारे यहाँ प्राचीन काल में जो उत्सवों पर मेले होते थे उन्हें "मह" कहते थे तथा उन महों में एक मह इन्द्रमह के नाम से विख्यात था। इसी मह में इन्द्रध्वज की पूजा होती थी तथा नाटक की उत्पत्ति भी उसी इन्द्रमह से हुई (डा० वासुदेव शरण, इण्डिया एज नोन टु पाणिनि पृ० ३३९-४०)। भरत-नाट्यशास्त्र में भी इसीकी ओर संकेत प्राप्त होता है। (भरत १-५३, ५४, ५५) इस उत्सव के जन्म की कथा बृहत् संहिता में मिलती है तथा यह उत्सव प्रायः भाद्र शुक्ल द्वादशी को होता था।

ऐसा अनुमान होता है कि भारत के आदिवासी अपने नाटक गुफाओं में खेला करते थे तथा आर्य खुले स्थानों में, तम्बूओं में। ऐसे तम्बू हमें निनवे की खुदाई से प्राप्त एक पत्थर पर खुदे मिलते हैं। (हावेल दी हिमालयाज़ इन इण्डियन आर्ट, पृ० ३१) इन दोनों का समन्वय हमें भरत नाट्यशास्त्र में मिलता है। यहाँ एक ओर तो नाट्यमण्डपों में खम्भों की व्यवस्था है (भरत २-४५ से ५६) तथा दूसरी ओर यह निर्देश है कि 'कार्यः शैलगुहाकारो द्विभूमिर्नाट्य-

मण्डपः' (भरत २-८१)। अभी तक नाट्यमण्डपों के जो प्रमाण भारत में प्राप्त होते हैं उनमें ऐतिहासिक दृष्टि से सबसे ठोस तो सीतावेंगा तथा जोगीमारा गुहा के मण्डप हैं। ये गुफायें सरगुजा राज्य के अन्तर्गत विन्ध्य-प्रदेश में हैं। (ब्लाश जे० एच० आर्केलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, १९०३-०४, पृ. १२३-१३०)। जोगीमारा गुफा में जो लेख प्राप्त हुआ है वह अशोक के समय की ब्राह्मी में लिखा हुआ है (ब्लाश, वही, चित्र ४३)। सीतावेंगा गुफा से प्राप्त लेख कुछ ही पीछे का ज्ञात होता है। जोगीमारा गुफा के लेख से यह पता चलता है कि वह गुफा सुतनुका नाम की देवदासी ने नर्तकों अथवा नटियों के हेतु बनवाई थी (नर्तकों के स्थान में नटियों भी पढ़ा जा सकता है)। सीतावेंगा गुफा नाट्यमण्डप की भाँति बनी हुई है। इसके समक्ष सीढ़ी की भाँति प्रेक्षागृह के भी अवशेष विद्यमान हैं (ब्लाश, वही, फलक ४३, सी)। इसके सामने का भाग अशोक के समय के लोमश ऋषि की गुफा से कहीं साधारण है। यहाँ द्वार पर न कोई खुदाई है, न कोई सजावट (वेंजामिन रोलाण्ड, दी आर्ट ऐण्ड आर्किटेक्चर आफ इण्डिया, चित्र ७)। इससे ऐसा अनुमान होता है कि ये गुफायें लोमश ऋषि की गुफा से प्राचीन हैं। भारत में गुफायें जनमनोरंजन के काम में तो बहुत प्राचीन समय से आती रही हैं जैसा हमें अश्वघोष (सौन्दरानन्द, ६, ३३) तथा कालिदास के ग्रन्थों से विदित होता है (कुमारसम्भव १।१०, मेघदूत १। २७)। इस कारण यह अनुमान करना कि ये गुफायें नाट्यमण्डपों के अवशेष हैं कुछ अनुचित नहीं है। सीतावेंगा गुफा ४६ फीट लम्बी तथा २४ फीट चौड़ी है। गुफा के भीतर प्रवेश करने के हेतु बाईं ओर से सीढ़ियाँ बनी हैं जो कदाचित् पात्रों के प्रवेश के हेतु काम में लाई जाती थीं। गुफा के भीतरी भाग में रंगमंच की व्यवस्था है। मंच तीन मेधियों पर बने हैं। प्रत्येक मंच सात फीट छः इंच चौड़ा है। तीनों की सतह एक दूसरे से २½ फुट ऊँची है। (ब्लाश, वही, पृ० १२६)। ये मंच ढालुआँ बने हैं। चबूतरों के समक्ष दो छेद बने हैं। कदाचित् इनमें बाँस या लकड़ी के खम्भे पहनाकर पर्दे लगाये जाते थे (ब्लाश, वही, पृ० १२७)। दर्शकों के बैठने का स्थान जो इस गुफा के समक्ष बना हुआ है वह ग्रीक आम्फी थियेटर की भाँति सीढ़ीनुमा है। उन सीढ़ियों पर कदाचित् लकड़ी के पटरे रखकर बैठने का स्थान बनाया जाता था, जैसा ग्रीक थियेटर में पीछे चलकर होने

लगा था। सीतावेंगा के समक्ष जो प्रेक्षागृह है उसमें ५० आदमी बड़े सुख से बैठ सकते हैं।

अब यदि हम भरत नाट्यशास्त्र में दिये हुए विकृष्ट नाट्यमण्डप के विवरण से इसके आकार प्रकार को मिलायें तो हमें ज्ञात होगा कि बहुत से अंशों में यह गुफा उससे मिलती है। जैसे भरत नाट्यशास्त्र में रंगमंच के हेतु यह निर्देश है कि 'कार्यः शैलगुहाकारो द्विभूमिर्नाट्यमण्डपः' (भरत नाट्यशास्त्र, चौखम्भा संस्करण, २। ८१, एम. ए. घोष, नाट्यशास्त्र पृष्ठ २६)। अब यदि यह अनुमान किया जाय कि भरत के समय के पहिले नाटक गुफाओं में खेले जाते थे तथा भरत ने उस प्राचीन आकार प्रकार को अपने नाट्यमण्डप में भी बनाने का निर्देश किया तो अनुपयुक्त न होगा। आगे उन्होंने मण्डप को दो स्तरों में विभाजित करने का निर्देश दिया। यहाँ भी प्रेक्षा की भूमि का स्तर एक है और गुफाओं के रंगमंच का दूसरा। लम्बाई चौड़ाई भी यदि मिलाई जाय तो भी ज्ञात होगा कि विकृष्ट नाट्यमण्डप की लम्बाई चौड़ाई जो मनुष्यों के लिये निर्धारित है, वह है लम्बाई ४८ फीट और चौड़ाई २४ फीट। सीतावेंगा की लम्बाई इस प्रकार केवल दो फीट कम पड़ती है। कदाचित् नापजोख में कुछ अन्तर पड़ा हो, या पहले ४६ फीट लम्बाई रहती हो, पीछे बदली हो।

नाट्यमण्डप की माप—भरत नाट्यशास्त्र में जो विद्वानों के मतानुसार ईसा की दूसरी शताब्दी में लिपिबद्ध किया गया (एम. एम. घोष, इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली, खं० २७, नवम्बर-दिसम्बर १६५१, पृ० ३४०) तीन प्रकार के नाट्यमण्डपों का विधान प्राप्त होता है, विकृष्ट, चतुरस्र तथा त्र्यस्र, (भरत, २। ८)—

विकृष्टश्चतुरस्रश्च त्र्यस्रश्चैव हि मण्डपः।
तेषां त्रीणि प्रमाणानि ज्येष्ठं मध्यं तथाऽवरम्॥ [दे० फलक १]

शिल्परत्न में (खं० १।३६, ६०, ६७) तथा भावप्रकाश में (भावप्रकाश, शारदातनय, बड़ौदा, १६३०, पृ० २६५, पंक्ति ६-१८) भी तीन प्रकार के नाट्यमण्डप मिलते हैं। परन्तु विष्णुधर्मोत्तर पुराण में केवल विकृष्ट तथा चतुरस्र नाट्यमण्डप प्राप्त होते हैं (खं० ३। २०। ४)। ऐसा ज्ञात होता है कि विकृष्ट नाट्यमण्डप ही बहुत प्रचलित थे। अब इन तीन प्रकार के मण्डपों के तीन भेद किये

गये, ज्येष्ट, मध्यम तथा अवर। इनके विषय में आगे चलकर इसी अध्याय में हमें यह मिलता है कि देवताओं के हेतु ज्येष्ठ मण्डप बनाने चाहिए, राजाओं के हेतु मध्यम तथा औरों के हेतु अवर (भरत नाट्यशास्त्र २। ११)—

देवानां भवनं ज्येष्ठं नृपाणां मध्यमं भवेत्।
शेषाणां प्रकृतीनां तु कनीयः संविधीयते॥

इनकी नाप को मिलाने से ऐसा प्रतीत होता है कि देवताओं के हेतु जो मण्डप बनते थे वे ५१ मीटर लम्बे होते थे, राजाओं के हेतु २६ मीटर तथा इतर जनों के हेतु १४.५ मीटर (भरत नाट्यशास्त्र २। ६-१०)। अब चतुरस्र मण्डप की चौड़ाई तो लम्बाई के बराबर ही होगी। विकृष्ट की चौड़ाई इस प्रकार दी हुई है, ज्येष्ठ की २५.५ मीटर, मध्यम की १४.५ मीटर तथा छोटे की ७.२५ मीटर। इस प्रकार नौ भाँति के मण्डपों का विवरण हमें भरत नाट्यशास्त्र में मिलता है (एम० एम० घोष, नाट्यशास्त्र पृष्ठ १६ फुटनोट)। एक और निर्देश से यह ज्ञात होता है कि मनुष्यों के हेतु ६४ हाथ से लम्बा मण्डप न बनाना चाहिए, क्योंकि बहुत बड़े मण्डप में भावभंगी नहीं दिखाई देती तथा शब्द स्पष्ट नहीं सुनाई देते (भरत नाट्यशास्त्र २। १८-१६-२०, विष्णुधर्मोत्तर पुराण ३। २०। ४)। यहाँ हमें मण्डप को दो भागों में विभाजित करने का भी निर्देश मिलता है, एक दर्शकों के हेतु तथा दूसरा भाग कलाकारों के हेतु। इसके एक हिस्से में प्रदर्शन की व्यवस्था तथा दूसरे में नेपथ्य की रहती थी। नाट्यमण्डप चारों ओर से दीवार से घिरा रहता था। मण्डप के धारण के हेतु इसमें खम्भे खड़े करने के लिये भरत ने लिखा है। दर्शकों के हेतु जो भाग नाट्यमण्डप में अलग व्यवस्थित है उसमें बैठने के स्थान को सीढ़ी की भाँति बनाने का निर्देश है। "सोपानकृत पीठकम्" (भरत २। ६१) इस प्रकार बनने पर प्रेक्षागृह वैसा ही लगेगा जैसे सीतावेंगा गुफा के सामने की ओर मिलता है।

सबसे पूर्व भरत नाट्यशास्त्र में नाट्य-मण्डप के निर्माण के हेतु नाप के आधार दिये हुये हैं—

आठ अणुओं का एक रज
आठ रजों का एक बाल

आठ बालों का एक लिक्षा
आठ लिक्षाओं का एक यूका
आठ यूकाओं का एक यव
आठ यवों की एक अंगुली
चौबीस अंगुलियों का एक हस्त
चार हस्त का एक दण्ड (भरत २-१३, १४, १५, १६)।

इस प्रकार जोड़ने पर एक हस्त ४५६ मीलीमीटर का हो जाता है। जो नाप के आधार कौटिल्य के अर्थशास्त्र में दिये हुये हैं इन नापों के आधारों से मिलता हुआ है (मनकड-इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली ख० ८-३ पृ० ४८२ नोट) जो नाप के आधार पाणिनि में प्राप्त होते हैं वे भी इनसे मिलते मालूम होते हैं (डा० वासुदेव शरण इण्डिया एज़ नोन टु पाणिनि पृ० २५७)। क्योंकि अंगुली की नाप आठ यव के बराबर अर्थशास्त्र में भी दी हुई है (कौटिल्य अर्थशास्त्र २-२०) तथा पाणिनि में भी (पाणिनि अष्टाध्यायी ५-४. ८६) और नाट्यशास्त्र में भी "यवास्त्वष्टो तथाङ्गुलम्" (भरत २-१५)। दण्ड के नाप में कुछ अन्तर ज्ञात होता है। भरत नाट्यशास्त्र में ९६ अंगुलियों का एक दण्ड मिलता है और पाणिनि में १९२ का। डा० वासुदेव शरण जी ने एक अंगुली की नाप ३/४ इंच मानी है। (डा० वासुदेव शरण वही पृ० २५५) ऐसा प्रतीत होता है कि ये नाप सिन्धु-सभ्यता के पश्चात् इस देश में चालू हुये होंगे क्योंकि उस प्राचीन सभ्यता में जो नाप मिले हैं उनका आधार दशमलव है (माके फरदर एक्सकवेशन ख० १ पृ० ४०४-४०५) हस्त तथा दण्ड के प्रमाण स्पष्ट हैं। परन्तु कई स्थानों पर भरत नाट्यशास्त्र में दण्ड तथा हस्त में भ्रमात्मक पाठ मिलता है। कई टीकाओं में भी इसी कारण कुछ गड़बड़ी है।

भूमि परीक्षा—वास्तु प्रारम्भ करने के पूर्व भूमि की पूरी परीक्षा करने का निर्देश भरत नाट्यशास्त्र में मिलता है। यह कार्य 'विचक्षण' अर्थात् विशेषज्ञ द्वारा होना चाहिये। नाट्यमण्डप के हेतु ऐसी पृथ्वी खोजनी चाहिये जो सम हो, स्थिर हो (ज्वालामुखी के समीप की नहीं), कड़ी हो, जहाँ की मट्टी काली अथवा श्वेत वर्ण की हो (भरत २।२५)। इस प्रकार की पृथ्वी कदाचित् इस कारण चुनी जाती थी

कि उस पर बना हुआ नाट्यमण्डप नाट्य के समय गिर न पड़े तथा पात्र वेधड़क अपने कार्य को कर सकें। यों नाट्यमण्डप के हेतु पृथ्वी चुन लेने के पश्चात् उसे हल चलाकर शोधन करना चाहिये जिसमें अस्थि, कील, त्रिण, गुल्म इत्यादि निकल जायँ। कार्य आरम्भ करने के हेतु निम्नांकित नक्षत्र भरत ने निर्धारित किये हैं (भरत २। २८)—

हस्त तिष्यानुराधाश्च प्रशस्ता नाट्यकर्मणि।
पुष्यनक्षत्र योगे तु शुक्लं सूत्रं प्रसारयेत्॥

यह समय उत्तर भारत में प्रायः आज भी गृहनिर्माण के हेतु अति उपयुक्त समझा जाता है।

रेखांकन— पृथ्वी के शोधन के पश्चात् नाट्यमण्डप की नाप पृथ्वी पर निर्धारित करनी चाहिये (भरत २। २७)

शोधयित्वा वसुमतीं प्रमाणं निर्दिशेत् ततः।

इस कार्य के हेतु शुक्ल रज्जु का प्रयोग बताया गया है। "शुक्लं सूत्रं प्रसारयेत्" (भरत २। २८)। यह सूत्र चाहे कपास का हो, चाहे बल्बज घास का, चाहे वल्कल छाल का हो, अथवा मूँज का हो। परन्तु यह कहीं से टूटा हुआ अथवा जोड़ा न होना चाहिये (भरत २-२६)। इस वाक्य से बोध होता है कि भरत के समय में भी भूमि पर रस्सी को चूने में डुबोकर गृह प्रमाण के हेतु चिह्न अंकित किये जाते थे। आज भी राजगीर इसी प्रकार निशान बनाकर तब नींव की खोदाई प्रारम्भ करते हैं। प्रमाण लेने का कार्य पूर्व की दिशा से प्रारम्भ किया जाता था (भरत २-३६) जैसा आज भी होता है। परन्तु इसे मुहूर्त तथा तिथि के अनुकूल होने पर शान्तिपाठ के पश्चात् ही प्रारम्भ करने का विधान मिलता है (भरत २। ३३)। अब विकृष्ट नाट्यमण्डप के हेतु प्रथम पूर्व की ओर से ६४ हाथ सीधा नापना चाहिये तथा एक रेखा सफेद सूत्र से डालनी चाहिये (फलक १ (१))। इस रेखा को दो बराबर भाग में बाँटना चाहिये बिन्दु 'ग' पर (भरत २-३४) पुनः पश्चिम की ओर से ३२ हाथ उत्तर की ओर नाप कर रेखांकन करना चाहिये (फलक १ (१) ख, घ)। अब विकृष्ट आकृति

बनाने के हेतु घ, ङ दूसरी रेखा क, ख के बराबर खींचनी होगी तथा क, ङ तक एक रेखा ख, घ के बराबर बनानी होगी। घ, ङ की रेखा को बराबर बाँटने के हेतु बिन्दु च लगाना होगा तथा इस प्रकार इस विकृष्ट आकृति के दो विभाग किये जायँगे (भरत २। ३४) जैसा फलक १ (१) पर 'ग' 'च' रेखा द्वारा किया गया है। अब ग ख घ च एक चतुरश्र बन गया तथा क ग च ङ दूसरा। आगे यह निर्देश मिलता है कि 'तस्यार्धेन विभागेन रंगशीर्षं प्रयोजयेत्' (भरत २। ३५)। इसके अनुसार यदि रेखा ग ख को छ, तथा च घ को ज पर दो भागों में बाँटा जाय तो छ ज को जोड़ने से ग ख घ च दो भागों में बँट जाता है। पश्चिम की ओर नेपथ्य होना चाहिये (भरत २। ३६) तो उसके पूर्व रंगमण्डप होगा। इस प्रकार नेपथ्य का स्थान ख घ छ ज निश्चित होता है तथा ग च ज छ नाट्य के हेतु रंगमण्डप बन जाता है और क ग च ङ एक चतुरश्र दर्शकों के हेतु बचता है।

अब ग च ज छ रंगमण्डप (भरत २। ६६) अर्थात् उस सारे स्थान को जो पात्रों को नाट्यक्रिया दिखाने के काम आता है, की परिधि हुई। इसमें तीन स्थान बनाते हैं—रंगशीर्ष, मत्तवारणी तथा रंगपीठ। नेपथ्य के द्वार रंगपीठ पर खुलने चाहिये (२। ९६-९७) इस कारण रंगपीठ को पीछे रखना अनिवार्य है तथा रंगशीर्ष, इसके आगे और मत्तवारणी रंगपीठ के ऊपर। अब रेखा झ ञ द्वारा रंगपीठ तथा रंगशीर्ष को दो हिस्सों में बाँट देना चाहिये।

चतुरश्र नाट्यमण्डप के हेतु पूर्व से पश्चिम की ओर ३२ हाथ का स्थान पृथ्वी पर नापना चाहिये, ऐसा निर्देश है (भरत २। ८७)। फलक १ (२) की रेखा क ख ३२ हाथ की प्रथम बनानी चाहिये तथा दूसरी दो रेखायें ख घ तथा क ङ रेखा क ख पर सीधी खड़ी की जानी चाहिये और घ से ङ तक एक सीधी रेखा खींची जानी चाहिये। इस प्रकार एक चतुरश्र बन जायगा। चतुरश्र आकार को दो भागों में बराबर बाँटने के हेतु (भरत २। ८९) रस्सी को दोहरी करके पृथ्वी पर बिन्दु लगाने चाहिये, जैसे फलक १ (२) में स्थान ग तथा च पर हैं, और ग च को एक रेखा से जोड़ देना चाहिये। इस प्रकार चतुरश्र के दो विकृष्ट भाग हो जायँगे। एक क ग ङ च तथा दूसरा ग च घ ख। अब दूसरे विकृष्ट को पुनः दो भागों में बाँटने के

हेतु रस्सी को चौहरी कर लेना चाहिये तथा छ और ज पर चिन्ह लगाकर एक रेखा छ ज खींच लेनी चाहिये। पुनः रस्सी को एकबार दोहरा दिया जाय और बिन्दु झ तथा ञ लगाकर एक रेखा खींच ली जाय। इस प्रकार हमें क ङ च ग एक विकृष्ट स्थान दर्शकों के हेतु प्राप्त हो जायगा। ख घ ज छ दूसरा विकृष्ट नेपथ्य के हेतु, छ ज झ ञ रंगपीठ तथा झ ञ च ग रंगशीर्ष के हेतु।

त्रिकोण नाट्यमण्डप का स्वरूप भरत नाट्यशास्त्र से ठीक ठीक पता नहीं लगता (भरत २। १०२-१०४)। यहाँ इतना ही मिलता है कि विकृष्ट तथा चतुरश्र नाट्यमण्डपों की भाँति इसे भी बनाना चाहिये (भरत २। १०४)। कदाचित् इस प्रकार के नाटयमण्डपों का बहुत प्रचार नहीं था। अब मध्यम आकार के त्रिकोण नाटयमण्डप बनाने के हेतु पृथ्वी पर पूर्व से उत्तर की ओर एक सीधी रेखा ३२ हाथ की यदि खींची जाय (फलक १ (३) क ख) (यह कार्य चूने में रंगी हुई रस्सी के द्वारा रस्सी को भूमि पर पटक कर आज किया जाता है) रस्सी को दोहरी करके एक बिन्दु इस रेखा के बीच में लगा लिया जाय (बिन्दु ग) और इस बिन्दु से एक खड़ी रेखा ३२ हाथ की क ख पर खड़ी की जाय जैसी फलक ३ (३) में रेखा ग घ है तथा ३२-३२ हाथ की दो रेखायें बिन्दु क तथा ख से रेखा ग घ पर बनाई जायँ, बिन्दु घ के जहाँ पर दोनों रेखायें मिलेंगी उस स्थान को ठीक से नाप लिया जाय तो एक नाटयमण्डप त्रिकोण आकार का बन जायगा (त्रिकोण क ख घ)। अब यदि रेखायें क घ तथा ख घ को सोलह-सोलह हाथ पर बाँट कर (भरत २। १०३) बिन्दु ङ तथा च लगा लिये जायँ, पुनः बिन्दु ङ तथा च से घ तक नापकर रेखायें ङ घ तथा च ख को दो बराबर भागों में बाँट लिया जाय, अर्थात् च और ङ से आठ-आठ हाथ पर बिन्दु छ तथा ज लगा लिये जायँ तथा एक रेखा छ से ज तक खींच ली जाय। तो छ ज घ एक त्रिकोण बन जायगा। यह स्थान नेपथ्य के हेतु हो जायगा। अब खड़ी रेखा घ ग को यदि दो बराबर भागों में बाँट लिया जाय तथा बिन्दु झ बीच में लगा लिया जाय और दो बिन्दु छ तथा ज से झ तक यदि दो रेखायें खींच दी जायँ तो एक त्रिकोण छ ज झ बन जायगा जो रंगपीठ (भरत २। १०३) और मत्तवारणी के हेतु निर्धारित किया जा सकता है। कुछ विद्वानों का मत है कि त्रिकोण नाटयमण्डप में मत्तवारणी नहीं बनाई जाती थी (माँकड, इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली,

खण्ड २-३ पृ० ४८२ तथा आगे)। अब यदि रंगशीर्ष का स्थान निर्धारित करने के हेतु च से ज तथा ङ से छ तक की रेखाओं को दो भागों में विभक्त किया जाय तथा ट और ञ दो बिन्दु लगा लिये जायँ और रेखा ग घ के भाग झ ग को भी दो बराबर भागों में बाँटकर ठ बिन्दु लगा लिया जाय तथा अब बिन्दु ठ से ट तथा ञ तक दो रेखायें खींच ली जायँ तो स्थान ट ज झ छ ञ ठ रंगशीर्ष के हेतु निकल आयेगा। दर्शकों के बैठने के हेतु स्थान क ख ट ठ ञ भी बच जायगा।

भरत नाट्यशास्त्र के पढ़ने से ऐसा ज्ञात होता है कि मत्तवारणी रंगपीठ के ऊपर ही बना करती थी, क्योंकि रंगपीठ बनाने के पश्चात् ही इसको बनाया जाता था (भरत २। ६४)। रंगपीठस्य पश्चात् तु कर्त्तव्या मत्तवारणी' तथा रंगपीठ से यह ऊँची बनाई जाती थी 'अध्यर्धहस्तोत्सेधेन कर्त्तव्या मत्तवारणी' (भरत २। ६५)।

इस प्रकार नाट्यमण्डप तीन आकार के बनते थे तथा प्रत्येक में एक प्रेक्षागृह (भरत २। १२), एक नेपथ्य गृह (भरत २। ३६), एक रंगपीठ (२। ६४), एक मत्तवारणी (२। ६४-६५) तथा एक रंगशीर्ष (२। ६९) होता था। सम्भवतः विकृष्ट नाट्यमण्डप में प्रेक्षागृह का आकार चतुरश्र, चतुरश्र में विकृष्ट तथा त्रिकोण में पंचकोण बनता था [फलक ३—(१) (२ (३)]। रंगपीठ तथा नेपथ्य विकृष्ट में विकृष्ट, चतुरश्र में भी विकृष्ट, तथा त्रिकोण में त्रिकोण रह जाता था। और रंगशीर्ष का आकार विकृष्ट में विकृष्ट, चतुरश्र में विकृष्ट तथा त्रिकोण में षटकोण प्रायः होता था; और मत्तवारणी का विकृष्ट में विकृष्ट, चतुरश्र में विकृष्ट तथा त्रिकोण में चतुष्कोण।

नींव—नाट्यमण्डप की नींव मूल नक्षत्र में देनी चाहिये, ऐसा भरत नाट्य-शास्त्र से ज्ञात होता है (भरत २। ४३)। नींव शंख, दुन्दुभि, मृदंग, पणव, तूर्य इत्यादि के निर्घोष के साथ (भरत २। ३७-३८) बलि इत्यादि देकर (भरत २। ३९) तथा ब्राह्मण भोजन कराकर रखनी चाहिये।

भित्ति—कार्य आरम्भ करके प्रथम भित्ति का निर्माण करना चाहिये। 'भित्ति कर्मणि निवृत्तेस्तम्भानां स्थापनं ततः (भरत २। ४५)। किन वस्तुओं से यह बनाई

जाती थी इसपर विवाद है। परन्तु एक स्थान पर दर्शकों के बैठने के हेतु जो चबूतरे बनते थे उसको इष्टिका से बनाने का निर्देश है (भरत २-६१)। यह शब्द पाणिनी में भी मिलता है, तथा इसका अर्थ ईंट ही किया गया है, (डा० वासुदेवशरण अग्रवाल उपरोक्त पृ० १३५) ईंट लगानेवाले राजगीर को इष्टिका-वर्द्धकी कहते थे। इस प्रकार यह अनुमान करना कि नाट्यमण्डप की भींत ईंटों तथा मट्टी के गारे से बनती थी कुछ अनुचित न होगा। इस प्रकार से बनी भीत सर्वकाल सुखदाई होती है, तथा पुनः दूसरे स्थान पर नाट्य-मण्डप खड़ा करने के काम में भी आ सकती है। भीत कितनी ऊँची होनी चाहिये इसका कोई विवरण नहीं मिलता। परन्तु रंगपीठ की (भरत २।६५) तथा मत्तवारणी की ऊँचाई को (भरत २।६६) देखते हुए ऐसा ज्ञात होता है कि भीत की ऊँचाई १८ फीट से कम नहीं होती होगी। प्रेक्षागृह की बनावट पर भी ध्यान देने से ऐसा ही पता लगता है। यदि १½ हाथ चौड़ी सीढ़ी बनाई जाती थी तो आठ पंक्तियाँ सीढ़ियों की इन प्रेक्षागृहों में बन सकती थीं। प्रत्येक पंक्ति एक दूसरे से एक हाथ ऊँची रखने की व्यवस्था है (भरत २। ६२)। इस प्रकार १२ फीट ऊँचाई पर बैठने की अन्तिम सीढ़ी हुई। उसके ऊपर बैठने वाले का मस्तक छत में न लगे इस हेतु तीन फीट उस सीढ़ी के ऊपर जगह छोड़नी पड़ेगी और वह इसके नीचे वाली सीढ़ी पर खड़ा होकर बाहर जा सके इसके लिये और ३ फीट का स्थान छोड़ना पड़ेगा। इस विचार से १८ फीट से कम ऊँचाई पर छत नहीं पट सकती थी। भित्ति भी इस अनुमान से १८ फीट ऊँची बनती थी जिस पर छत की ओरी रखी जाती होगी।

स्तम्भ—भीत बनाने के पश्चात् खम्भों के खड़े करने का निर्देश है (भरत २। ४५)। शुभ तिथि में रोहिणी अथवा श्रवण नक्षत्र में इस कार्य को करना चाहिये तथा इन खम्भों की तीन दिन तक पूरी रक्षा करनी चाहिये (भरत २। ४६)। यह नियम इस कारण कदाचित् बनाया गया होगा कि खम्भे पृथ्वी में पूरी तरह बैठ जायँ तथा उसके आसपास की पृथ्वी कड़ी पड़ जाय। स्तम्भस्थापना का कार्य सूर्योदय के समय होना चाहिये (भरत २। ४७)। खम्भों की संख्या जोड़ने पर ऐसा ज्ञात होता है कि प्रायः २४ खम्भे नाट्यमण्डप के लिये खड़े किये जाते थे। चार, चारों कोनों पर (भरत २। ४७ ४८-४९-५०), १० प्रेक्षागृह के

हेतु (भरत २ । ६१), चार रंगपीठ बनाने के लिये (भरत २ । ६५), छः रंगशीर्ष के हेतु । ये स्तम्भ दोषरहित अर्थात् सीधे चिकने हों, घुने, दीमक लगे न हों ऐसा निर्देश मिलताहै (भरत २ । ५८) । भरत ने चार खम्भों का नामकरण किया है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा यह कहा है कि वैश्य खम्भा पश्चिमोत्तर में स्थापित किया जाय (भरत २ । ४६), और शूद्र खम्भा पूर्वोत्तर में (भरत २ । ५०), ब्राह्मण स्तम्भ पूर्व में (भरत २ । ५०) इन वाक्यों से यह अर्थ निकलता है कि यह स्तम्भ पूर्व-दक्षिण के कोने में होगा । क्षत्रिय स्तम्भ का स्थान निश्चित नहीं है । परन्तु यदि तीन स्तम्भ इस प्रकार तीन कोने पर हुए तो चौथा क्षत्रिय स्तम्भ पश्चिम-दक्षिण के कोने पर होना चाहिये । ऐसा निर्देश प्राप्त होता है कि ब्राह्मण स्तम्भ की नींव में सुवर्ण का कर्णाभरण (कान का आभरण) रखना चाहिये (भरत २ । ५२) । क्षत्रिय स्तम्भ के मूल में ताँबा अथवा ताँबे का सिक्का (भरत २ । ५२), वैश्य स्तम्भ के मूल में चाँदी अथवा चाँदी का गहना (भरत २ । ५३), शूद्र स्तम्भ के मूल में लोहा अथवा लोहे का बना हुआ कोई अस्त्र (भरत २ । ५३) । नाट्यमण्डप के दूसरे खम्भे के नीचे सुवर्ण रखा जाय । इन स्तम्भों का स्वस्त्ययन, पुण्याहवाचन तथा जय शब्द के साथ स्थापन करना चाहिये (भरत २ । ५४) । इन स्तम्भों पर मालाएँ तथा वस्त्र लपेटने की विधि मिलती है (भरत २ । ४८) । इनके रंग प्रायः वही होने चाहिये जिन रंगों की वस्तु ब्राह्मणों को प्रदान करने का निर्देश मिलता है । जैसे ब्राह्मण स्तम्भ के लिये सर्व शुक्ल (भरत २ । ४८), क्षत्रिय स्तम्भ के हेतु सर्व रक्त (भरत २ । ४९), और वैश्य स्तम्भ के लिये सर्व पीत (भरत २ । ५०) तथा शूद्र स्तम्भ के हेतु नील (भरत २ । ५१) । इस प्रकार चारों कोने के खम्भे चार वर्ण की मालायें तथा वस्त्रों से लपेटने पर नाट्यमण्डप की शोभा द्विगुण बढ़ जाती रही होगी । इन स्तम्भों के स्थापित करने के पश्चात् गोदान, ब्राह्मण-भोजन इत्यादि करने का भी आदेश है (भरत २ । ५९–६०) । और खम्भों के स्थान के विषय में भरत नाट्यशास्त्र में कोई निर्देश नहीं मिलता । अभिनव भारती में इसके विषय में जो निर्देश मिलता है उससे केवल इतना ज्ञात होता है कि एक से दूसरे खम्भे की पारस्परिक दूरी ४ हाथ की रहनी चाहिये (अभिनव भारती, पृ० ६६-६७) । इनके स्थान भी चन्द्र-भानु गुप्त जी ने अपनी पुस्तक में दिखाये हैं । वे व्यावहारिक दृष्टि से उपयुक्त नहीं ज्ञात होते (इण्डियन थिएटर, पृ० ३९), क्योंकि दर्शक इस प्रकार के प्रेक्षागृह में

बैठकर जब नाटक देखेंगे तो उनके समक्ष खम्भे आ जायँगे। भरत ने यह निर्देश किया है कि नाट्यमण्डप को 'शैलगुहाकार' बनाना चाहिये। उसके अनुसार खम्भे भित्ति की सीध में लगने चाहिये जैसे कार्ला के चैत्य में दिखाई देते हैं (ज़िम्मर, दि आर्ट आफ इण्डियन एशिया, खं० २ चित्र ७८)। इस ढंग से खम्भों को यदि रखा जाय तो बीच का स्थान दर्शकों के हेतु निर्विरोध बच रहता है। (फलक १-(१) (२) (३))। इस प्रकार खम्भे खड़े करने पर वैसीही छत बन सकेगी जैसी कार्ला चैत्य में है।

छत—स्तम्भ-संस्थापन के पश्चात् नाट्यमण्डप के छाजन का कार्य आरम्भ करना चाहिये। इसके निर्माण के विषय में कुछ निर्देश नहीं मिलता। केवल इतना ही पता चलता है कि स्तम्भ मण्डप धारण करने के हेतु ही खड़े किये जाते थे।

'दशप्रयोक्तृभिः स्तम्भा शक्ता मण्डपधारणे।' (भरत २। ६१)
विधिना स्थापयेत् प्राज्ञो दृढ़ान् मण्डप धारणे। (भरत २। ६४)
तत्र स्तम्भा प्रदातव्यास्तजूतै मण्डपधारणे। (भरत २। ६५)

इन निर्देशों से ऐसा ज्ञात होता है कि नाट्य-मण्डप की छत खम्भों पर खड़ी की जाती थी। यह भी अनुमान होता है कि नाट्य-मण्डपों की छतें फूँस की ढालुआँ धरनों पर रखकर बनती थीं। (फलक २-(३) जैसी राजगीर के मकानोंकी अनुमानतः थीं। (परसी ब्राउन इण्डियन आरकिटेक्चर पृ० ३), अथवा जैसी कारली के चैत्य में थी (ज़िम्मर दि आर्ट आफ इण्डियन एशिया ख० २-चित्र ७८)। जो छत सीतावेंगा में दिखाई देती है वह भी अन्दर से ढालुआँ है (म्युजेगिमे फोटो, नं० १४८११-४)।

प्रेक्षागृह का निर्माण-इस कार्य के पश्चात् प्रेक्षागृह के निर्माण का कार्य आरम्भ किया जाता था। इसमें दस स्तम्भ लगते थे जैसा पहिले लिखा जा चुका है (भरत २। ६१) तथा यह सीढ़ीनुमा (ईंटों का) बनाया जाता था (फलक २, २प्रे.)। तथा इन सीढ़ियों पर काठ लगाया जाता था (भरत २। ६२)। प्रत्येक सीढ़ी एक दूसरे से १ हाथ ऊँची रहती थी। इस प्रकार देखने से ऐसा ज्ञात होता है कि सीढ़ियों की आठ पंक्तियाँ प्रत्येक प्रकार के प्रेक्षागृह में बन सकती थीं। कुछ इसी ढंग की सीढ़ियाँ सीतावेंगा गुफा के समक्ष बनी हुई प्राप्त होती हैं (ब्लाश, आर्केलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया रिपोर्ट, १९०३-४, फलक ६२)। इन पर भी लकड़ी के पीढ़े बैठने के लिये

लगा करते थे ऐसा अनुमान है (ब्लाश, वही, पृष्ठ १२६)। प्रायः ये उसी प्रकार के बनते रहे होंगे जैसे रोमन दर्शकों के बैठने के पटरे बनते थे (ज्यार्ज फ्रेडले तथा जान रीव्स, ए हिस्ट्री आफ दि थिएटर—स्माल रोमन थिएटर एट ताओरमीना, फलक ४०)। ग्रीक प्रेक्षागृह से भारतीय प्रेक्षागृह आकार में बहुत छोटे हैं)। संगीत रत्नाकर में नृत्यगृह का एक वर्णन प्राप्त होता है जिससे यह ज्ञात होता है कि जब राजा नाटक देखने आते थे तो उनको बैठाने का किस प्रकार प्रबन्ध होता था। (श्री चन्द्रभानु गुप्त, इण्डियन थिएटर, पृष्ठ २७ पर बना हुआ चित्र)।

रंगमण्डप का निर्माण—अब रंगमण्डप की भूमि को तीन भाग में बाँटकर जैसा पहिले लिखा जा चुका है, रंगपीठ, रंगशीर्ष तथा नेपथ्य की भूमि को प्रस्तुत करना शेष रहता है। मत्तवारणी का स्थान तो 'रंगपीठ' के ऊपर ही ज्ञात होता है जैसा इन वाक्यों से अनुमान होता है। 'रंगपीठस्य पश्चात् तु कर्त्तव्या मत्तवारणी' (भरत २। ६४)। मत्तवारणी शब्द पर बहुत विवाद है। परन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि यह शब्द अटारी का द्योतक था। कुमारस्वामी का मत है कि रंगभूमि दो खण्ड ऊँची बनती थी (कुमारस्वामी, हिन्दू थिएटर, इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली भाग ९, १९३३, पृ० ५९४)। सुबन्धु की वासवदत्ता में मत्तवारणी को एक वरण्डिका के रूप में हम पाते हैं (एम. एम. घोष, नाट्यशास्त्र पृ० २९)। ऐसा ज्ञात होता है कि यह अटारी के रूप में स्तम्भों पर रंगपीठ पर खड़ा किया जाता था तथा इसके तोरण को दो हाथी के सिर की घोड़ियाँ उठाए रहती थीं (फलक २-३), जिससे इसका नामकरण मत्तवारणी पड़ा होगा। प्रायः रंगमण्डप के रंगपीठ तथा रंगशीर्ष के पारस्परिक स्थानों पर भी विवाद है, परन्तु यह स्पष्ट है कि जब नेपथ्य का स्थान जो पश्चिम है (भरत २। ३६) उसका द्वार रंगपीठ पर खुलेगा (भरत २। ९६-९७) तो रंगपीठ को नेपथ्य से बिलकुल मिला हुआ होना चाहिये। दूसरे हमें नाट्यशास्त्र में रंगदेवता के पूजन का विधान मिलता है (भरत ३। ९९)। ये देवता हिन्दू देवी, देवताओं में से तो कोई ज्ञात नहीं होते। कदाचित् चुल्ल कोक देवता की भाँति, जिनकी मूर्ति भारहुत में पाई गई है, (रो लेण्ड उपरोक्त चित्र १४, ए) ये भी कोई यक्ष अथवा यक्षी रहे हों जिनका पूजन प्रायः देश में प्रचलित रहा हो। सीतावेंगा गुफा में हमें पृथ्वी पर खुदे हुए दो चरण दिखाई देते हैं, इनके बीच में एक मनुष्य मूर्ति दृष्टि गोचर होती है जो अपनी

दोनों टाँगें पूरी फैलाये हुये हैं (म्युजे गिमे फोटो, नं० १४८१२-८-१०)। सम्भवतः ये वही रंग-देवता हैं जिनका वर्णन भरत नाट्यशास्त्र में मिलता है। एक समय यक्षों के पूजन का देश में बहुत प्रचार था (कुमारस्वामि, यक्षाज़ ख० १, पृष्ठ; २ ड ला वाले पूसाँ, इण्डो युरोपियाँ स इण्डो इरानियाँ जुस्क त्रासाँ अवाँ जीजू क्री (६१२०) पृष्ठ ३०४, ३१५ ३१६)। यदि यह धारणा ठीक है तो इन रंग देवता के सिर की ओर ही रंगशीर्ष होना चाहिये तथा उनकी पीठ की ओर रंगपीठ। इनका सिर प्रेक्षागृह की ओर है। इस प्रकार भी रंगशीर्ष प्रेक्षागृह की ओर बनाना चाहिये तथा रंगपीठ नेपथ्य की ओर। इस प्रकार नेपथ्य, रंगपीठ, मत्तवारणी तथा रंगशीर्ष का पारस्परिक स्थान ठीक हो जाने पर सबसे पहिले प्रत्येक की भूमि पृथिवी की सतह से अलग-अलग ऊँची उठाने के हेतु भराव करना होगा। आजकल इस कार्य को ईंटा सामने से जोड़ कर खाली स्थान में मिट्टी भर कर किया जाता है। कदाचित् यही प्रथा पहले भी रही हो। पृथ्वी को पूर्ण रूप से तृण इत्यादि से रहित करके भरने का निर्देश मिलता है (भरत २। ७१)। इस पृथ्वी को ऐसा बनाने का आदेश है कि वह दर्पण की भाँति समतल हो (भरत, २। ७४), यह मछली की पीठ की तरह या कछुए की पीठ की भाँति न होनी चाहिये (भरत २। ७३)।

जैसा पहिले कहा जा चुका है रंगपीठ के हेतु चार खम्भों की व्यवस्था है (भरत २। ६५), चतुः स्तम्भ समायुक्ता रंगपीठ प्रमाणतः। परन्तु यह नहीं पता चलता कि ये खम्भे किन स्थलों पर खड़े किये जायँ। अनुमानतः इनको ऐसे स्थानों पर खड़ा किया जाना चाहिये कि वे नाट्यमण्डप की छत के उस भाग को सम्हाल लें जो प्रेक्षागृह के पश्चिम है। अब यहीं रंगपीठ के पार्श्व में एक वेदिका बनाने का भी निर्देश है (भरत २। १००)। यह भी आज्ञा है कि रंगपीठ को ऊँचाई पर, तथा समथल बनाना चाहिये (भरत २। १००)। ऐसा अनुमान होता है कि रंगपीठ की उँचाई रंगशीर्ष से १½ हाथ अधिक होती थी (भरत २। ६५)। रंगशीर्ष के पूर्व में जिधर प्रेक्षागृह है, वज्र अर्थात् हीरा रखना चाहिये (भरत २। ७४)। पश्चिम में स्फटिक, दक्षिण में वैडूर्य (लहसुनियाँ) तथा उत्तर में प्रवाल (मूँगा) (फिनो ले लापिडेर आंडियाँ पृ० ४५-४८)। रंगशीर्ष में छः खम्भे खड़े करने का विधान है (भरत २। ६६)।

मत्तवारणी के विषय में पहिले ही कहा जा चुका है कि यह अटारी की भाँति रंगपीठ पर बनती थी [फलक २, (२) म]। इसकी उँचाई के विषय में यह निर्देश है कि यह प्रेक्षागृह से ऊँची न हो (भरत २ । ६६), अर्थात् प्रेक्षागृह के सबसे पीछे वाले बैठने के स्थान से ऊँची न हो जिसमें वे दर्शक जो पीछे बैठे हों उन्हें भी इस पर का नाट्य-कार्य भली भाँति दिखाई दे। अब यदि रंगपीठ की भूमि नाट्यमण्डप की पृथ्वी से ४½ फीट ऊँची है तथा पीछे का बैठने का स्थान १२ फीट तो मत्तवारणी ७½ फीट से ऊँची नहीं बनेगी जिसमें इस पर के पात्रों का मस्तक छत से न टकराए। इसको बनाने के पूर्व ब्राह्मण भोजन कराने का उनको आसन, दक्षिणा इत्यादि देने का विधान है (भरत २ । ६८)। कदाचित् यह दान इस कारण दिया जाता था कि अटारी नाट्य-कर्म के समय गिर न पड़े, देवता इसकी रक्षा करें। मत्तवारणी एक ही बनती थी, दो नहीं।

नेपथ्य पात्रों के उपयोग के हेतु सीमित रहता था (भरत २३ । ३) तथा इसमें एक सूचिका भी बनती थी (२३ । ४) जिसमें पात्र अपने को सजाते थे। अंगादिभिरभिव्यक्तिमुपगच्छन्त्यन्नतः (भरत २३ । ४)। यह नहीं पता चलता कि यह कितनी बड़ी होती थी, अनुमानतः यह नेपथ्य के बीच में बनाई जाती थी। भरत नाट्य-शास्त्र के पढ़ने से ऐसा ज्ञात होता है कि स्त्रियाँ भी नाट्य में कार्य करती थीं (भरत २२ । २८–४७ इ०)। यह बात कौटिल्य के अर्थशास्त्र से भी सिद्ध होती है (कौटिल्य-शास्त्र, अध्यक्ष प्रचार अधिकरण अ० २७ । ४१)। यदि यह धारणा सत्य है तो नेपथ्य-सूचिका दो विभागों में विभक्त रहती होगी जिसमें एक ओर पुरुष मात्र अपने को वस्त्र अलंकार इत्यादि से आभूषित कर सकें तथा दूसरी ओर स्त्रियाँ (फलक १ (१) (२) (३), न)। नेपथ्य में ही वे सब वस्तुएँ रखी जाती थीं जिनका नाट्य-कर्म के समय काम पड़ता था (भरत २३ । ५), जैसे शस्त्र, विमान, ध्वजा इत्यादि (भरत २३ । ६) तथा अलंकार, वस्त्र इत्यादि (भरत २३ । १०)। नेपथ्य से ही आकाशवाणी इत्यादि की क्रिया भी होती थी।

द्वार तथा खिड़कियाँ—ऐसा ज्ञात होता है कि प्रेक्षागृह में दो द्वार होते थे, एक पूर्व की ओर, दूसरा दक्षिण की ओर। "पूर्व दक्षिणतो वह्नि निर्वेश्य ....." (भरत २ । २५)। आपस्तम्ब श्रौत-सूत्र के अनुसार पूर्व का द्वार सांसारिक सुख का तथा दक्षिण का पितृलोक के सौख्य का प्रदाता होता है (स्टेला क्रामरिश टेम्पुल डोर

इत्यादि जनरल सोसाइटी आफ ओरियण्टल आर्ट, १९४२, पृ० २४२)। इसी कारण कदाचित् पूर्व का द्वार मण्डप में जाने के हेतु बनाया जाता था तथा दक्षिण का निकलने के लिये। आज भी प्रायः भारत में रहने के अधिकांश गृहों का एक द्वार पूर्व की ओर होता है जिससे गृह में प्रविष्ट होकर मंगल कार्य किया जाता है तथा दूसरा दक्षिण की ओर जिससे शव घर से निकाला जाता है। जहाँ दक्षिण द्वार नहीं होता वहाँ प्रायः भित्ति को तोड़ कर शव बाहर निकालते हैं। ये द्वार भूमि के चित्र फलक (पर (१), (२) (३) औ पर दिखाये गये हैं। ये द्वार पूर्व तथा दक्षिण में किस स्थान पर होते थे इसका ठीक पता नहीं चलता। केवल इतना ज्ञात होता है कि त्रिकोण नाट्यमण्डप में प्रवेश द्वार कोण में होता था जो कदाचित् पूर्व-दक्षिण में बनता था [फलक ३ (३) में औ पर दिखाया गया है तथा यह निर्देश मिलता है कि 'सप्रतिद्वारं दारुविद्धं न कारयेत्' (भरत २। ८१)]। नाट्यमण्डप के अन्तर्गत ऐसा अनुमान होता है कि नेपथ्य से रंगपीठ पर आने के हेतु दो द्वार होते थे, एक जिससे पात्र प्रवेश करते थे (भरत २-९६-९७) तथा दूसरा जिसके द्वारा रंगमंच पर नाट्य-विषयक सामान लाया जाता था 'रंगस्याभि मुखं कार्यं द्वितीयं द्वारमेव तु' (भरत २। ९८)। यह पता नहीं लगता कि ये द्वार कितने ऊँचे रहते थे। ऐसा ज्ञात होता है कि इनमें यवनिका का ही प्रयोग होता था, कपाट नहीं लगते थे 'विघटाय यवनिकाम् नृत्य पाठ्य कृतानि च' (भरत, ५। १२)। कुमारस्वामी का भी यही मत ज्ञात होता है (इण्डियन हिस्टारिकल क्वारटरली, ९, १९३३, पृ० ५९४)।

खिड़कियों के विषय में केवल इतना संकेत प्राप्त होता है 'नान विन्यास संयुक्तं यंत्र जाल गवाक्षकम्' (भरत २। ७८)। यह नहीं ज्ञात होता कि ये कितनी ऊँची तथा चौड़ी होती थीं तथा किन स्थानों पर लगती थीं। कदाचित् प्रेक्षागृह में वायु के प्रवेश के हेतु उनका प्रयोग होता था। नासिक के विहार में भी द्वार के दोनों ओर खिड़कियाँ बनी हुई मिलती हैं (परसी ब्राउन. इण्डियन आर्किटेक्चर बुद्धिस्ट एण्ड हिन्दू, फलक २२ ए)। ऐसा अनुमान होता है कि यह प्रथा नाट्यमण्डपों में रही होगी। फलक १ (१) (२) (३) पर इनका स्थान इ, ई पर दिखाया गया है। कदाचित् इनके कपाटों को चरखी पर लपेटी रस्सी के द्वारा खोलते बन्द करते थे। इसी कारण इन्हें 'यंत्र जाल गवाक्षकम्' कहा गया है।

यवनिका—भरत नाट्यशास्त्र में यवनिका शब्द मिलता है। जैसा पहिले लिखा जा चुका है (भरत ५ । १२)। ऐसा ज्ञात होता है कि नेपथ्य के द्वार में यवनिका का प्रयोग तो अवश्य होता था। यवन शब्द सिलवाँ लिवि के मतानुसार ईरान से भारत में आया (ल एतड ग्रेक, टोम ४, १८९१ पृ० २५)। परन्तु इस शब्द की उत्पत्ति के विषय में श्री चन्द्रभानु गुप्तजी का मत ठीक चलता है (इण्डियन थिएटर, पृ० ६२-६३)। रंगमंच के समक्ष भी परदा लगता था या नहीं, इस बात पर बहुत विवाद है। (श्री चन्द्रभानु गुप्त, इण्डियन थिएटर, पृ० ५६, ६३)। परन्तु सीतावेंगा गुफा में दो छेद पृथ्वी में चबूतरों के समक्ष दिखाई देते हैं (ब्लाश, आर्केलाजिकल सर्वे रिपोर्ट, १९०३-४, पृ० १२३) जो कदाचित् खम्भे लगाकर परदा टाँगने के काम में आते थे क्योंकि यदि रंगमंच के समक्ष परदे नहीं लगते थे तो उस प्रकार के दृश्य जैसे मृच्छकटिक के दूसरे अंक का दृश्य जिसमें वसन्तसेना प्रेम में तल्लीन बैठी हुई दिखाई देती है, अथवा अविमारक के दूसरे अंक का जिसमें अविमारक बैठा हुआ दिखाई देता है, या जैसे शाकुन्तल नाटक में दुष्यन्त की राजसभा का दृश्य इत्यादि कैसे दिखाए जाते रहे होंगे ? नाटक को अंकों में बाँटने का ध्येय का ही अन्त हो जाता है यदि रंगमंच के समक्ष परदा न हो। पूर्व रंग की भी क्रिया परदे के पीछे करना है और रंगशीर्ष पर। इस प्रकार भी यही ध्यान में आता है कि रंगमंच के समक्ष परदा रहता था तथा आवश्यकतानुसार मत्तवारणी के समक्ष भी परदा टाँगा जाता था जिससे उसका स्वरूप घर के ऐसा बन जाय जिसकी आवश्यकता ऐसे दृश्यों को दिखाने में अवश्य पड़ती रही होगी जैसे मृच्छकटिक के तीसरे अंक में जब शर्विलक भीत को अपने जनेऊ से नापता है। यह तो पहिले ही लिखा जा चुका है कि नेपथ्य के दोनों द्वारों पर परदे रहते थे जिन्हें हटाकर पात्र रंगपीठ पर आते थे जैसा मृच्छकटिक के दूसरे अंक में समवाह के विषय में मिलता है। उसी नाटक के उसी अंक में कर्णपूरक भी परदा झटके से हटाकर प्रवेश करता है। यह परदा नेपथ्य के द्वार का ही ज्ञात होता है।

नाट्यमण्डप की सजावट—रंग-मण्डप को अर्थात् उसके मुख को पर्वत की गुफा के समान बनाने का निर्देश प्राप्त होता है जैसा पहिले लिखा जा चुका है (भरत, २ । ८१)। यह कार्य कदाचित् काष्ट लगा कर ही किया जाता रहा होगा। यों ऐतिहासिक तथ्य के अतिरिक्त भी इस प्रकार के रंग-मण्डप के मुख से पात्रों

द्वारा प्रतिध्वनित शब्द दूर तक प्रयाण करते हैं यह अनुभव सिद्ध हैं। इसके पश्चात् रंगमण्डप का बहिरंग काष्ठ-तोरण (भरत २।७७) से सुसज्जित किया जाता था। ईंटों की जोड़ाई के पश्चात् नाट्यमण्डप के शृंगार की व्यवस्था मिलती है, जिसमें सबसे प्रथम लकड़ी के काम करने की आज्ञा है (भरत २ । ७६)। लकड़ी के तोरण, लतायें, अट्टालिका, नाना विन्यासयुक्त गवाक्ष, शालभंजिका इत्यादि बनाये जाते थे (भरत २ । ७६, ७७, ७८, ७९)। इनमें से स्तम्भों पर लतायें, कपोल इत्यादि लगाये जाते थे (भरत २ । ७९) तथा नाना भाँति से वेदिकाओं की शोभा बढ़ाई जाती थी (भरत २ । ७८)। इन आदेशों पर विचार करने से बरबस साँची के खम्भे, तोरण इत्यादि का स्मरण आ जाता है (मार्शल और फूशे, दी मानुमेण्ट्स आफ साँची, फलक ४०, पृ० ३४–३५ इत्यादि)। इन वस्तुओं को लगाने के विषय में यह आदेश प्राप्त होता है कि इनको इस प्रकार लगाना चाहिये कि ये किसी द्वार के समक्ष न पड़ें (भरत २ । ८१)।

रंगाई छुहाई—इस प्रकार काष्ठ-कर्म को पूरा करके भीत की सजावट प्रारम्भ करनी चाहिये ऐसी आज्ञा है (भरत २ । ८०)। भीत पर अच्छा भित्तिलेप चढ़ाना चाहिये (भरत २ । ८३)। कदाचित् यह भित्तिलेप उसी प्रकार का बनाया जाता होगा जैसा अजन्ता तथा सीतावेंगा की गुफाओं में मिलता है। भित्तिलेप में चूने का लेवा, पानी शीघ्र सोख लेने के दुर्गुण के कारण नहीं व्यवहार किया जाता था (श्रीमन्त बाला साहब पन्त प्रतिनिधि अजन्ता, पृ० ३१)। इसके स्थान पर मिट्टी का लेवा लगाया जाता था। श्री राय कृष्णदास जी का कथन है कि अजन्ता में गोबर तथा पत्थर का चूरा तथा कभी-कभी भूसी मिले हुए गारे का लेवा चढ़ाया जाता था। यह लेवा चूने के पतले पलस्तर से ढका जाता था (राय कृष्णदास, भारतीय चित्र कला, पृ० १३)। अनुमानतः नाट्यमण्डप की भीतरी भित्ति पर भी मिट्टी तथा भूसी को मिलाकर लेवा चढ़ाया जाता था। इस पलस्तर को पीटकर समथल किया जाता था। इस लेवे के सूखने के पश्चात् एक कोट बरी का चूना चढ़ाया जाता था जिसको सूखे नेनुएँ से रगड़कर चिकना किया जाता था। इस पर पुनः शंख पीसकर उसका लेप चढ़ाते थे तथा उसे बट्टी मारकर चिकना करते थे। ऐसा करने से ही भीत चमक सकती थी जैसा नाट्यशास्त्र में नाट्य-मण्डप की भीत का विवरण मिलता है (भरत २ । ८४)। बाहर की भीत पर चूना पोता जाता

था—'सुधा कर्म तथैवास्य कुर्यात् बाह्यं प्रयत्नतः' (भरत २ । ८४) । नाट्य-मण्डप की भीतर की भीत पर जमीन बाँधकर चित्र-कर्म किया जाता था (भरत २ । ८५) । इनमें स्त्रियों के साथ भोग के दृश्य तथा लतायें इत्यादि अंकित किये जाते थे (भरत २ । ८५, ८६) । इस प्रकार के चित्र कुछ जोगीमारा की गुफा में भी प्राप्त होते हैं (ब्लाश, आर्केलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, १९९३–१९०४, पृ० १०३) । इन चित्रों के विषय को श्री रायकृष्णदास जी ने बताया है (भारतीय चित्रकला, पृ० ७) । भरत नाट्यशास्त्र में इन प्रधान रंगों के नाम प्राप्त होते हैं, काला, नीला, पीला तथा लाल—इन रंगों को मिलाकर और रंग बनाये जाते थे जिनसे चित्रकारी भी की जाती होगी । जोगीमारा की गुफा में जो चित्र हैं वे बहुत ही थोड़े रंगों से बने हुए प्रतीत होते हैं (ब्लाश, वही, पृ० १०३, १०४) ।

रंगमंच पर संगीतज्ञों का स्थान—ऐसा ज्ञात होता है कि रंगशीर्ष पर ही संगीतज्ञों का स्थान था (भरत, ५ । २७, २८ तथा ३३ । २०६ पृ० ४४९) । भरत नाट्यशास्त्र का एक पूरा अध्याय विविध वाद्यों तथा नाटक में उनके व्यवहारों पर है (भरत अ० ३३) । विविध वाद्य जो भरत नाट्यशास्त्र में मिलते हैं, वे हैं मृदंग, पणव, दुर्दुर (भरत ३३–२) दुन्दुभि, मुरज, आलिंग्य, ऊर्ध्वक, अङ्किक, (भरत ३३–११) भेरी, पटह, झर्झा, दुंदुभी, डिण्डिम, (भरत ३३ । २७), शारीर्य वीणा, (भरत ३३ । ३१), मृदंग, दुर्दुर, पणव अंग झल्लरी, (भरत ३३ । १६), पुष्कर (भरत ३२ । १०), शंख तूर्य (२ । ३७, ३८) विपञ्ची, चित्रा दारवी, कच्छपी, घोष (भरत ३३ । १५) शंख, डक्फनी (भरत ३३ । १७) इत्यादि । वाल्मीकि की रामायण में हमें, मड्डुक, पटह, वम्श, विपाञ्ची, मृदंग, पणव, डिण्डिम, आडम्बर, कलशी नाम वाद्यों के प्राप्त होते हैं (रामायण, ५ । ११ । ३८) राय पसेणी सुत्त में भी हमें इनसे मिलते जुलते नाम दृष्टिगोचर होते हैं (जगदीश चन्द्र जैन, लाइफ इन एनशन्ट इण्डिया एज डिपिक्टेड इन जैन कानन्स, पृ० १०३) । इससे ऐसा विश्वास होता है कि उस समय ये नाम प्रचलित हो चुके थे । भरत नाट्यशास्त्र के अनुसार मार्दंगिक को रंगशीर्ष पर पूर्व मुख बैठाना चाहिये अथवा दर्शकों की ओर उसका मुख होना चाहिये । पाणविक तथा परदारिक को इसके बायें तथा दाहिने ओर पूर्वमुख बैठना चाहिये । गायणिक उत्तराभिमुख बैठें, या यों समझिये कि रंगमंच के दक्षिण की ओर । गायकी उत्तर की ओर प्रतिष्ठित हों,

इनके बायें वेणिका तथा इनके दक्षिण बाहू पर वमसारिका (भरत नाट्यशास्त्र, ३३ । २०६ चौखम्भा पृ० ४४६) ।

आलोक—नाट्यमण्डप के आलोक के हेतु दीपक व्यवहार में आता था (भरत ३ । ९२–९३) । ऐसा अनुमान होता है कि कुशाण काल की परइयाँ जो स्थान स्थान पर खोदाई में निकली हैं कदाचित् दिये का काम देती थीं । (बी० बी० लाल एक्सकवेशन्स एट हस्तिनापुर इत्यादि, एनशण्ट इण्डिया नं० १०-११ फलक २०, १ की भाँति की परई) । इस प्रकार बहुत से दीपक रख कर ही नाट्यमण्डप में उजाला किया जाता होगा । मशाल से भी कदाचित् काम लिया जाता होगा ।

नाटक का समय—भरत नाट्यशास्त्र के अनुसार अपराह्न में, प्रभात के समय, सूर्यास्त के समय, अर्धरात्रि में भोजन के समय तथा भोजन पूर्व के समय को छोड़कर दिन-रात्रि के किसी भी समय नाटक खेले जा सकते थे (भरत २७ । ८५, ८६, ८७, ९३) । परन्तु विशेष समय विशेष प्रकार के नाटक खेले जाते थे । धार्मिक विषय के नाटक, दिवस के मध्याह्न के पूर्व खेले जाते थे (भरत २७ । ८९) । वीररस के मध्याह्न के पश्चात् (भरत २७ । ९०), शृंगाररस के सूर्यास्त के पश्चात् (भरत २७ । ९१), करुणरस प्रधान नाटक अर्धरात्रि के पश्चात् (भरत २७ । ९२) । आज प्रायः सभी रस के नाटक सन्ध्या अथवा रात्रि के समय ही खेले जाते हैं । प्राचीन भारत में विशेष समय विशेष रस के उत्पादन के हेतु उपयुक्त समझा जाता था, जैसे संगीत में भैरवी का समय प्रातःकाल ही रखा गया है, श्री का संध्या तथा मालकोस का रात्रि में ।

निष्कर्ष-भरत नाट्यशास्त्र में दिये हुए नाट्यमण्डप के आकार-प्रकार तथा उसकी सजावट को देखने से ऐसा ज्ञात होता है कि भरत के समय तक भारत के आदिवासियों के नाट्यमण्डपों का प्राथमिक रूप जो हमें सीतावेंगा गुफा, हाथी गुम्फा तथा नासिक के पास की पुलुमई गुफा में प्राप्त होता है (हेमेन्द्रनाथ दासगुप्ता, दि इण्डियन स्टेज, खण्ड १ पृ० ४५), वह आर्यों के प्राचीनतम लकड़ी के मकानों के रूप में समन्वित होकर तथा दोनों के सम्मिश्रण से एक नया ढाँचा खड़ा हो चुका था । यही नहीं, नाट्यमण्डप के रूप के विषय में नियम भी बन चुके थे तथा उनपर धर्म का नियंत्रण भी आरम्भ हो चुका था जैसा पग-पग पर भरत नाट्यशास्त्र में

पूजाओं के निर्देश से ज्ञात होता है (भरत, २। ६, ३३, ६०, ६२ इत्यादि)। ये नियम इतने कड़े थे कि नापने की रस्सी टूट जाना (भरत २। ३०) तथा एक स्तम्भ का दोषयुक्त होना (भरत २। ५७), नाट्यमण्डप के स्वामी के मरण का सूचक समझा जाने लगा था। भरत के समय तक भारतीय रंगमंच इस महान संसार का द्योतक माना जाने लगा था जहाँ स्त्री पुरुष प्रविष्ट होकर अपनी पूर्व निश्चित लीला करते हैं तथा उसके संवरण पर यहाँ से विदा लेते हैं। इस कारण इसके रूप तथा इसकी बनावट में उन महान् उद्देश्यों का सम्मिश्रण हो चुका था जो प्रकृति के नियंत्रण में सामञ्जस्य का आविर्भाव करते हैं।

* विषय सम्बन्धित ग्रन्थ सूची *

१—अगरवाल, वासुदेव शरण डा०—इण्डिया अएज़ नोन टु पाणिनि, युनिवर्सिटी आफ लखनऊ, १९५३।

२—अग्नि पुराण—सं० श्री पंचानन तारकरत्न जी, वंगवासी स्टीम मशीन प्रेस कलकत्ता, १९१२।

३—अभय देव—राय पसेणीय सूत्त, अहमदाबाद, १९९४ वि०।

४—अभिनव भारती—सं० रामकृष्ण कवि, बरोदा।

५—आचार्य, पी. के.—ए डिक्शनरी आफ हिन्दू आर्किटेक्चर, अलाहाबाद, १९२७।

६—कालिदास ग्रन्थावली—सं० पं० सीताराम चतुर्वेदी, अखिल भारतीय विक्रम परिषद, २००७ वि।

७—कीथ, ए. वी., दी संस्कृत ड्रामा—इट्स ओर्जिन, डेवलपमेन्ट, थियोरी एण्ड प्रक्टिस, क्लारेण्डन प्रेस आक्सफोर्ड, १९२४।

८—कुमार स्वामी, ए. के., हिन्दू थिएटर—इण्डियन हिस्टारिकल क्वाटरली, ख०-९ (१९३३) पृ० ५९४।

९—कुमार स्वामी, ए. के.—इण्डियन आर्किटेकचरल टर्म्स, अमेरिकन ओरियण्टल जर्नल, ख० ४८, पृ० २५० तथा आगे।

१०—कुमार स्वामी, ए. के.—अर्लि इण्डियन आर्किटेकचर ईस्टर्न आर्ट, ख० २, ३।

११—कौटिल्य अर्थशास्त्र—सं० जे. जोली-खं० १, २, मोतीलाल बनारसी दास लाहोर, १९२३।

१२—ग्रोसे, जे.—नाट्य शास्त्र डु भरत, लीयों (फ्रांस), १८९८।

१३—ग्रोसले, जियोर्ज—लो थीयाट्र ए ला डांस ओ कम्बोज, जुर्नाल आज़ियातिक, ख० ११९४, ज़ाँविये-मार्श पृ० १२५-१४३।

१४—चतुर्वेदी, सीताराम पं०—अभिनव नाट्य शास्त्र, अखिल भारतीय विक्रम परिषद काशी, २००८ वि०।

१५—**जगदीशचन्द्र जैन**—लाइफ इन एन्सन्ट इण्डिया अएज़ डिफ्क्टिड इन जैन केनन्स, न्यु बुक लिमिटेड, बाम्बे, १९४७।

१६—**जायसवाल**—हाथी गुम्फा इन्सक्रिपशन जर्नल विहार उड़िस्सा रिसर्च सोसायटी १९१८, पृ० ३६३, ३९६।

१७—**दास गुप्ता, हेमेन्द्र चन्द्र, डा०**—दी इण्डियन स्टेज ख०–१, २ कलकत्ता।

१८—**परसी ब्राउन**—इण्डियन आर्किटेक्चर, हिन्दू एन्ड बुद्धिस्ट, तारापुरवाला, बाम्बे, १९४२।

१९—**पाणिनि सूत्र**—सं० शोभित्र मिश्र, जयकृष्ण दास, हरिदास गुप्त, विद्या विलास प्रेस, बनारस, १९५२।

२०—**फूशे हिप्पोलिट**—रामायण डु वाल्मीकि. पारी १८५४।

२१—**बरुआ, बी. एम.**—इन्सक्रिपशन्स आफ अशोक, कलकत्ता, १९४३।

२२—**ब्लाश, टी. जे,**—केव्स एण्ड इन्सक्रिपशन्स रामगढ़ हिल, आर्केआलाजिकल सर्वे रिपोर्ट आफ इण्डिया, १९०३, १९०४, पृ० १२३, १३०।

२३—**बोस, मोनिन्द्र मोहन**—दी रिलिजन आफ अशोक बुद्धा जर्नल आफ दी डिपार्टमेन्ट आफ लेटर्स युनिवर्सिटी आफ कालकत्ता, खं० १० (१९२३) पृ० १२९ तथा आगे।

२४—**भरत नाट्यशास्त्रम्**—विद्या विलास प्रेस, बनारस, १९८५ वि०।

२५—**भण्डारकर, डा०**—अशोक, युनिवर्सिटी आफ कालकत्ता, १९३२।

२६—**मनकड, डी. आर.**—हिन्दू थियेटर इण्डियन हिस्टारिकल क्वाटरली खं० ७ (१९३२) पृ० ४८० तथा आगे।

२७—**मन मोहन घोष**—नाट्य शास्त्र, रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, १९५०।

२८—**मन मोहन घोष**—प्राचीन भारतेर नाट्यकला, कलकत्ता, १९४५।

२९—**महाभारत**—सं० रामचन्द्र शास्त्री, चित्रशाला प्रेस, पूना, १९३६।

३०—**माके, ई.**—फरदर एक्सक्वेशन्स एट मोहन जुदाड़ो, न्यु देलही, १९३८।

३१—मार्शल—मोहन जुदाड़ो एण्ड दी इण्डस सिविलजेशन, खं० १, २, ३, लन्दन, १९३१।

३२—याज्ञिक, आर. के.—दी इन्डियन थियेटर इट्स ओर्जिन एण्ड इट्स लेटर डेवलपमेन्ट्स अण्डर योरोपियन इन्फलुअेन्स, ज्योर्ज एलन उनविन, लन्दन, १९३३।

३३—रेनु, एल. ऐ.—फिलियोज़ा, जे, एण्ड क्लासिक, पारी, १९४७।

३४—रेनू, एल. इत्यादि—डिक्सियोनेर संस्कृत, फ्राँसे, पारी, १९३२।

३५—राओ-जी—ऐलीमेण्ट्स आफ हिन्दु आइकोनोग्रफी-मद्रास, १९१४।

३६—लेवी-सिलवाँ—प्रे आर्यां ए प्रे ड्राविडियाँ, ज़ुरनाल आज़ियातिक, जुइये १९२३।

३७—लेवी-सिलवाँ—लो थियाट्र आँण्डियाँ, पारी, १८९०।

३८—लेवी-सिलवाँ—ला ग्रेस एलाण्ड, रेव्यु, डेज़, इत्युड ग्रेक, खं० ४, १८९१, पृ० २४, २५।

३९—श्री शुक्ल यजुर्वेद संहिता, माध्यान्दनी—खेमराज श्री कृष्णदास, बाम्बे, १९२७।

४०—सारंग देव—संगीत रत्नाकर, आनन्द आश्रम प्रेस, पूना।

४१—हज़रा, आर. सी.—बुद्धिस्ट एविडेन्स आफ दी अर्ली एक्जिस्टेन्स आफ ड्रामा, इण्डियन हिस्टारिकल क्वाटरली, खं० १७, नं० २ (जून १९४१), पृ०, १९६, २०६।

———

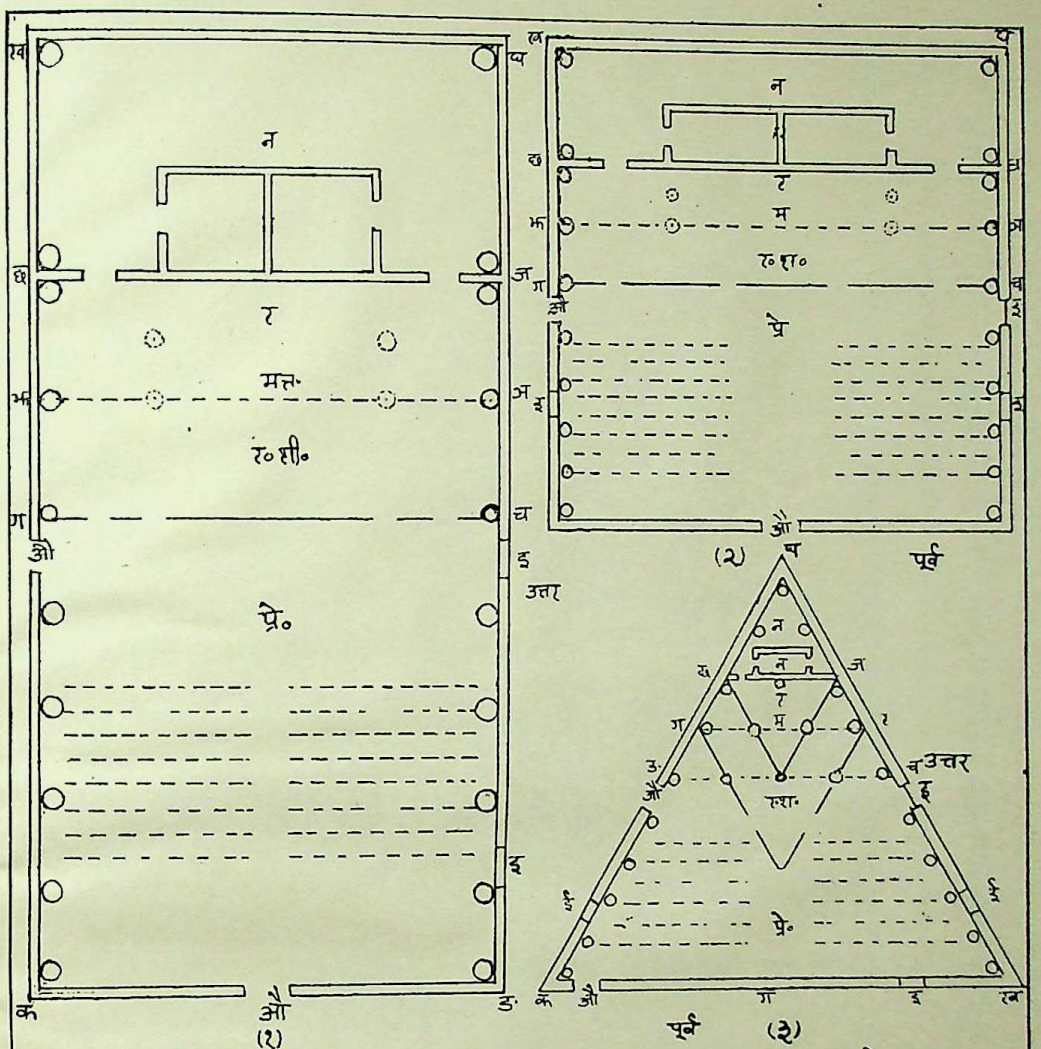

सूची गृह

न : नेपथ्य

र : रङ्गपीठ

म : मत्तवार्णी

र० रा० रङ्गशीर्ष

प्रे० : प्रेक्षागृह

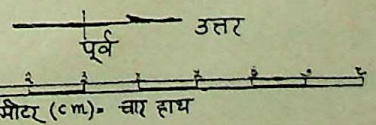

फलक १

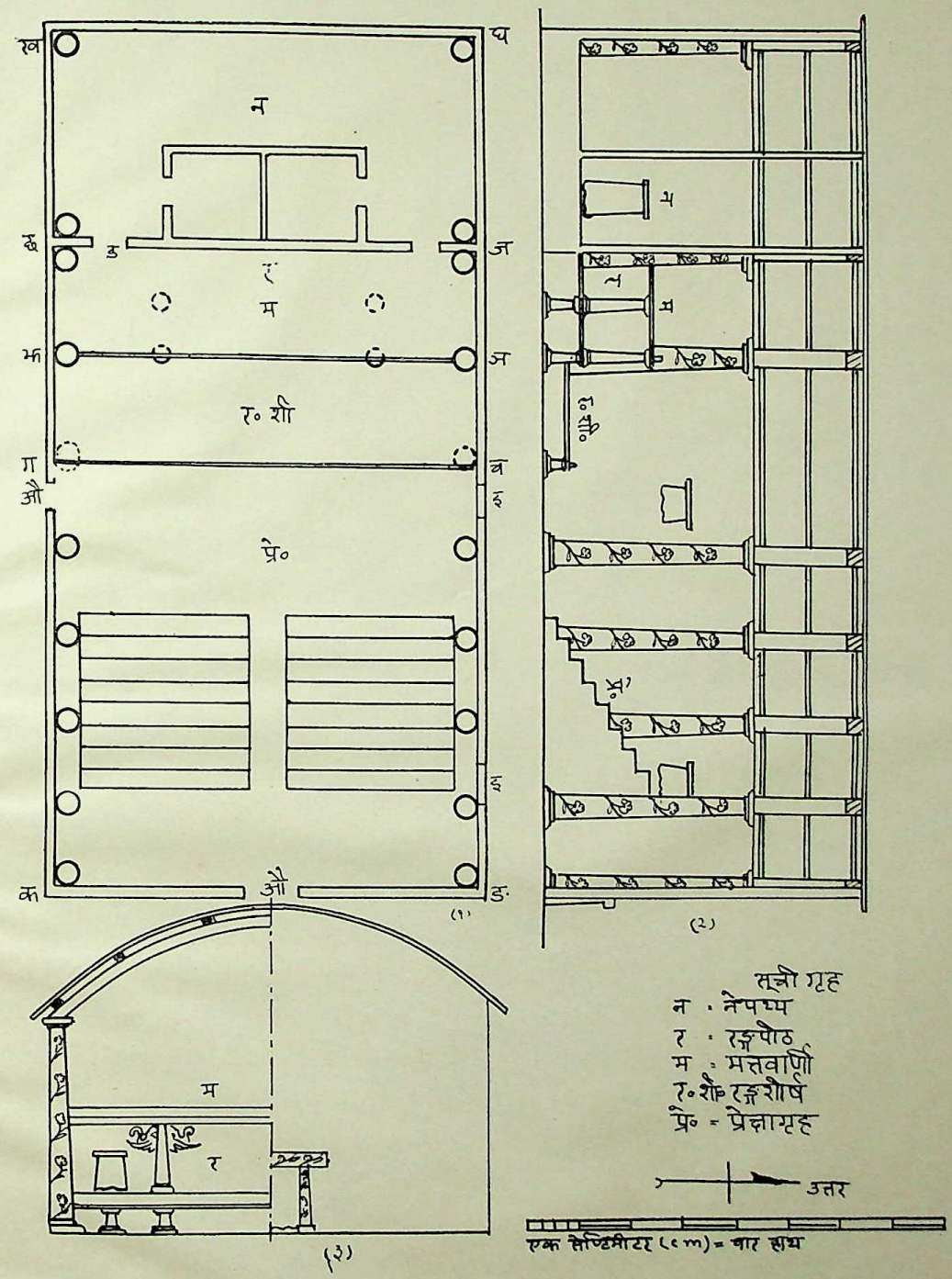
ख
घ
न
छ
ङ
ज
र
म
झ
ञ
र० शी
ग
ब
औ
इ
प्रे०
ए
क
औ
ड
(1)
म
र० शी०
(2)
म
र
(3)
सूत्री गृह
न : नेपथ्य
र : रङ्गपीठ
म : मत्तवारणी
र० शी० रङ्गशीर्ष
प्रे० = प्रेक्षागृह
उत्तर
एक सेण्टिमीटर (cm) = चार हाथ

फलक २